श्री श्री गौरांगविधुर्जयति

श्रीगोवर्द्धनशतकम्

श्रीश्री विष्णुस्वामी संप्रदायाचार्य्य
श्रीकेशवाचार्यमहोदयेन
विरचितम्

अनुवादक –
डीगनिवासी पं० हरिकृष्ण 'कमलेश जी'

अर्थ सहायक –
मान् शंकरलालजी पुरीशाली (आगरा)

प्रकाशक –
बाबा कृष्णदास
कुसुमसरोवर, मथुरा

न्यौछावर ।)

श्री श्री गौरांगविधुर्जयति

दो शब्द

प्रस्तुत श्रीगोवर्द्धनशतक के रचयिता श्री केशवाचार्य्यजी के विषय में हमें विशेष कोई ज्ञात नहीं है। उन की संक्षेप जिवनी यह है कि आप गवालियर निवासी, सनाढ्य ब्राह्मण, श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त वैष्णवाग्रगण्य श्री मोहन मिश्र जी के पुत्र थे। आप की माता का नाम श्रीमती भगवती देवी था। आप वाल्यकाल से ही श्रीकृष्ण भक्ति परायण थे तथा बालकों के साथ श्रीकृष्णलीला विषयक विविध क्रीड़ा करते थे। कभी रोते थे कभी हँसते थे कभी उन्मत्त होकर आत्म ज्ञान शून्य हो जाते थे। अतन्तर आप के हृदय में ब्रजवास की तीव्र इच्छा हुई। आप पिता माता की आज्ञा लेकर व्रज में आये तथा अनेक लीला स्थल दर्शन करते हुए श्रीगोवर्द्धन की तलहटी में पधारे और तत्कालीन विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के अनुयायी श्री रोहिणाचार्य्य जी से मन्त्र दीक्षा ली। तव से आप एकनिष्ठ होकर गोवर्द्धन में वास करने लगे और शेष जीवन को श्रीहरिदेव जू की सेवा में लगाकर समय बिताने लगे। आप भगवान् हरिदेव जू के अनन्य भक्त तथा सेवक हुए। प्रेमावतार, प्रेम के ठाकुर भगवान् श्री गौरांगदेव जगत जीवों को प्रेम नाट्य सिखाते हुए जिस समय वृन्दावन होकर श्रीगोवर्द्धन आये थे उस समय श्री केशवाचार्य्य भी यहाँ उपस्थित थे ऐसा कहा जाता है। राधाभाव आस्वादन में उन्मत्त प्रभु श्री गौरांग हरि ने श्रीराधाकुण्ड से गोवर्द्धन के दर्शन तत्पश्चात् हरिदेवजी के समक्ष जो प्रेममाधुर्य्य, तथा भावावेश नृत्य रंग देखाया था सो इस प्रकार है—

तवे चलि आइला प्रभु सुमनः सरोवरे ।
गोवर्द्धन देखि ताहाँ हइला विह्वले ॥
गोवर्द्धन देखि प्रभु हैला दण्डवत ।
एक शिला आलिंगिया हइला उन्मत्त ॥
प्रेमे मत्त चलि आइला गोवर्द्धन ग्राम ।
हरिदेव देखि ताहाँ करिला प्रणाम ॥
मथुरा पद्मेर पश्चिमे दले यार वास ।
हरिदेव नारायण आदि परकास ॥
हरिदेव आगे नाचे प्रेमे मत्त हैया ।
सब लोक देखिते आइसे आश्चर्य्य शुनिया ॥
प्रभुर प्रेम सौन्दर्य्य देखि लोक चमत्कार ।
हरिदेवेर भृत्य प्रभुर करिल सत्कार ॥
भट्टाचार्य्य ब्रह्मकुण्डे याञा पाक कैला ।
ब्रह्मकुण्डे स्नान करि प्रभु भिक्षा कैला ॥
से रात्रे रहिला हरिदेवेर मन्दिरे ॥ इत्यादि

उसका उल्था ब्रजभाषा के चैतन्यचरितामृत में (जो हाल ही प्रकाशित हो चुका है) श्रीसुवलस्याम महोदय ने ठीक प्रकार दिया है।—

तब चलिकैं आए प्रभु कुसुमोखर ढिग जोइ।
तहाँ देखि गोवर्द्धनहिं भए जु विह्वल सोइ॥
गोवर्द्धन कों देखिकैं करी दण्डवत ताहि।
एक सिला आलिंग के महामत्त भौ आहि॥
प्रेम मत्त आये जु चलि श्री गोवर्द्धन ग्राम।
श्री हरिदेवहि देखि के करैं तिन्हें परणाम॥

है जु मधुपुरी पद्म के पच्छिम दल जिहि वास।
नारायण हरिदेव जू है सो आदि प्रकास॥
प्रेममत्त ह्वै के जु प्रभु नाचें आगें ताहि।
आए देखन लोग सब सुन के अचरज आहि॥
प्रभु को प्रेमस्वरूप लखि जन अचिरज विस्तार॥
किय हरिदेव जु पूजकोंन प्रभु को बहु सतकार॥
भट्टाचारज पाक किय ब्रह्मकुण्ड पर जाय।
ब्रह्मकुण्ड प्रभु न्हाय कें भिक्षा कीनी आय॥
मन्दिर श्री हरिदेव के रहे जु ताही रैंन॥ इत्यादि

श्री मन्महाप्रभु का विशेष आदेश यह था कि कोई व्यक्ति कभी गोवर्द्धन के ऊपर न चढ़ें। क्योंकि श्रीगोवर्द्धन साक्षात् श्रीकृष्ण रूप तथा कृष्ण भक्तों में श्रेष्ठ है। इसलिये जब आपकी प्रबल इच्छा हुई कि गो..वर्द्धन के ऊपर विराजित श्री गोपालजी का दर्शन करूँ तब उस समय गोपालजी भय का अभिनय कर के म्लेच्छों के डर से—सेवकों द्वारा छिप कर गांठौली ग्राम में रहे तब प्रभु परिक्रमा के रास्ता होकर गांठौली गये एवं तहां रह कर श्रीगोपालजी का दर्शन करने लगे। तब से कोई गौड़ीय वैष्णव गोवर्द्धन के ऊपर नहीं चढ़ते हैं। सभी वैष्णव, भक्तों को यही चाहिये कि श्रीगोवर्द्धन के ऊपर न चढ़े।

प्रस्तुत गोवर्द्धन शतक रचनाकार श्रीकेशवाचार्य्य विष्णु-स्वामी सम्प्रदाय अन्तर्गत थे तथा आपके वंशज श्री हरिदेवजी के गोस्वामी अभी विद्यमान है। उक्त वंश में गोस्वामी श्री जगन्नाथजी (जगनलाल) हुए कुछ रोज हुआ आपका गोलोक-वास हो गया है। आप बड़े प्रेमी तथा सहृदय, भागवत के सरस वक्ता थे। आप मुझसे बहुत स्नेह करते थे। उन्होंने इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने के लिये मुझे दिया था। अनेक कारणों से मैं उसका प्रकाशन अभी तक नहीं कर पाया था। सम्प्रति श्री प्रभु की कृपा से तथा उक्त जगनलाल गोस्वामीजी के

भ्रातृपुत्र श्रीगोस्वामी रामस्वरूपजी की प्रोत्साहन से इस मनोहर ग्रन्थ रत्न को प्रकाशित करने में समर्थ हुआ हूँ। डीग (भरतपुर रियासत) निवासी गौड़ीय पीठाधीश श्रृङ्गारवट गोस्वामी श्री देवकीनन्दनजी प्रभु के आश्रित, प्रिय बन्धुवर श्री हरिकृष्ण कमलेश (वैद्य) जी ने प्रचुर परिश्रम के साथ इसका अनुवाद कर मुझे प्रदान किया है। अतः मैं उक्त दोनों महानुभावों का हृदय से आभारी हूँ।

परिशेष में हरिभक्त प्रेमी श्रीमान् शंकरलालजी (चिम्मन-लाल मिट्ठनलाल पूरी वाले) सुभाष बाजार आगरा निवासी को अनेक धन्यवाद देते हैं कि आपने इस ग्रन्थ प्रकाशन कार्य में यावतीय व्यय लगाकर परम उपकार किया।

गोवर्द्धनवास प्रार्थी
वैष्णवदासानुदास
कृष्णदास
कुसुम सरोवर।

॥ श्री ॥

श्री श्री गोवर्द्धन शतकम्

श्री हरिदेवाय नमः

य उच्चैः शृंगाग्रैर्विलसति समन्तान्मणिमयैः
क्वचित्प्लक्षाक्षोटैर्वकुलतिलकाम्रादिमिलितैः ।
मृगैः शस्यासक्तैः क्वचिदपि लतारूढविहगैः
स चायं मे नित्यं स्फुरतु हृदये कोऽपि गिरिराट् ॥१

नमामि गोवर्द्धनपादपल्लवं स्मरामि गोवर्द्धनरूपमुज्वलम् ।
वदामि गोवर्द्धन नाम मंगलं गोवर्द्धनात्किञ्चिदहं न जाने॥२

श्री श्री गौरांग विधु जेयति

जो चारों ओर मणि-मय ऊँचे शिखरों के अग्रभागों से, कहीं प्लक्ष, कहीं अखरोट, मौलश्री, तिलक, आम आदि वृक्ष समूह से, कहीं पके हुए खेतों में विचरने वाले मृगों से और कहीं लताओं में बैठे पक्षियों से शोभायमान है, ऐसा पर्वतों का राजा श्री गिरिराज मेरे हृदय में नित्य ही स्फूर्ति हो ॥१॥

मैं श्री गोवर्द्धन के चरण पल्लवों में नमस्कार करता हूँ तथा श्री गोवर्द्धन के उज्ज्वल रूप को स्मरण करता हूँ तथा श्री गोवर्द्धन को छोड़ कर और किसी (देवादि) को भी नहीं जानता हूँ ॥ २ ॥

कृतवति हरिदेवे शक्र दर्पापहत्यै
व्रजपति मखभंगं संश्रयाद् भूधरस्य ।
मघवति दृढ़कोपाद् गोकुले वर्षति स्म
पशुपतिमवताद्यस्तं गिरीन्द्रं स्मरामि ॥ ३

आभीर राज तनयो चित चन्द्रशालाः
राका शशाङ्क धवलीकृत प्रान्त देशाः ।
यस्मिन्विभान्ति शतशः सहचारिणीभिः
संसेविता विजयतेऽयमलं गिरीन्द्रः ॥ ४

जब व्रज में श्री हरिदेवजी ने इसी श्री गिरिराज का आश्रय लेकर इन्द्र के दर्प को नाश करने के लिये यज्ञ (व्रज में प्रतिवर्ष होने वाले 'पर्जन्य-यज्ञ') को भंग किया था तब इन्द्र ने दृढ़ कोप से गोकुल पर (अखण्ड) वर्षा की उस समय जिन श्री गिरिराज ने (इन्द्र-प्रकोप से) श्री नन्दराय तथा सभी गोपालों की रक्षा की थी उन श्री गोवर्द्धन का मैं स्मरण करता हूँ। (यह सब कथा श्री भागवतादिक पुराणों में प्रसिद्ध है कि, 'श्रीकृष्णचन्द्रजी ने सात दिन पर्यन्त श्री गिरिराज-पर्वत को एक हाथ पर धारण कर घोर वर्षा से व्रजवासियों का परित्राण किया था') ॥३

जिस समय श्री गोवर्द्धन में पूर्णिमा के चन्द्र किरणों से उज्ज्वल-प्रदेश वाली, शत शत सखि (व्रज-सुन्दरियाँ) से सुसेवित श्रीकृष्णचन्द्रजी के मनोनुकूल अनेक चन्द्रशालाएँ (विहार-स्थली) शोभा पाती हैं, उन श्री गिरिन्द्र (पर्वत राज) की जय हो ॥ ४

भूयादुपत्यकायामधित्यकायां गिरेः क्वचिद् वासः ।
यदि मे कृता गुरूणामर्चा भावेन—शुद्धेन ॥ ५
नगपति तट भूमौ सन्निवासं मदीयं
वितर कमल सूनो ! सृष्टि कारी यतस्त्वं ।
तव यदि न कदाचिच्छक्तिरेतादृशी भो,
पुन रधिकमनर्थं मा कृथा, मादृशेषु ॥ ६
कथय कथय जिह्वे सद्गुणान् भूधरस्य
विमृश विमृश चेतस्त्वदद्भुतं तत्स्वरूपम् ।
पिब पिब वत चक्षु स्तच्छ्रियं वीक्षणेन
विलुठ विलुठ मार्गे त्वं तनो, नित्यमेव ॥ ७

यदि मैंने, अपने जीवन में विशुद्ध भाव से गुरु-जनों की सेवा-सुश्रूषा की हो तो, श्री गिरिराज के निकट-भूमि (तलहटी) में कहीं पर मेरा निवास हो । ५

कवि पुनः विधाता से श्री गिरिराज की सन्निधि में निज निवास की प्रार्थना करता है :—हे विधाता, क्योंकि, तुम सृष्टि के उत्पन्न करने वाले हो, अतः यदि कदाचित् आपकी इतनी शक्ति है तो मुझे नगपति श्री गोवर्द्धन के निकट-भूमि में निवास करने का—जन्म देने का—सौभाग्य प्रदान करो अन्यथामेरे समान तुच्छ जीवों पर विशेष अनर्थ मत करो। ६

हे मेरी जिह्वा, तू श्री गोवर्द्धन के श्रेष्ठ गुणों का ही कथन कर और हे मन ! तू उनके अद्भुत स्वरूप का ध्यान कर, हे नयन, तुम उनकी मनोरम शोभा का निरीक्षण द्वारा पान करो तथा हे मेरे देह, तू नित्य ही श्री गोवर्द्धन के मार्ग की पावन-धूलि में लुण्ठन कर अर्थात् प्रेम से साष्टाङ्ग प्रणति किया कर ।७

गोवर्द्धनेति धरणीधर भूधरेति
शैलेति पल्लविक चित्त प्रसाधकेति ।
नामानि सुन्दरि ! वद प्रथितानि जिह्वे,
श्रीकृष्ण केलि सदनस्य सदेत्थमस्य ॥ ८

चेत स्त्वमेव दयितं गिरिराजरूपं
पानीय सूयवस कन्दर दान भूपं ।
नो विस्मर प्रिय सखे, ऽक्षि विलास हेतुं
तुंग प्रियाल सरलार्जुन राजि भाजम् ॥ ९

हे सुन्दरि रसने ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के क्रीडा-निकेतन, इस श्री गिरिराज के, गोवर्द्धन, धरिणी धर, भू धर, शैलपल्लविक, चित्तप्रसाधक इन सुप्रसिद्ध नामों को सर्वदा इसी तरह (प्रेम से) कथन किया कर (इसी में तेरी सार्थकता है। ८

हे मेरे मन ! तू भूपति के समान निर्मल (झरनाओं का) जल, हरित कोमल तृण तथा स्वच्छ सुहावनी कन्दराओं का मनुष्य मात्र को दान करने वाले, ऊँचे-ऊँचे प्रियाल, सरल तथा अर्जुन वृक्षों की पंक्ति का धारण करने वाले एवं नयनों को सुख देने वाले परम प्रिय श्री गिरिराज के रूप को कदापि न भूल जाना। ९

यच्चेतसि स्फुरति नित्य विलास धामा
शैलाधिपः सकल केलि कला निधानः ।
कृष्णस्य तस्य पद पद्म रजोऽभिषेकं
किं नावहेयुरखिलावशमाय सम्यक् ॥ १०

अखिल जनन वीथी भुक्त नाना प्रयासैः
कथमपि मनुजत्त्वं प्राप्तमप्राप्य मेव ।
तदपि न हतदैवेनाधुना मे निवासो
नगपतितटभूमे र्लभ्यते हन्त हन्त ॥ ११

जिनके मन में श्री कृष्णचन्द्र की नित्य-लीला का धाम तथा सम्पूर्ण केलि कलाओं के निधि 'श्री गोवर्द्धन' प्रकाश करता है, उनके चरण-कमल-रज के अभिषेक को सर्वथा अनेक पापों के शमनार्थ कौन नहीं चाहता है, अर्थात् सभी मनुष्य चाहते हैं । १०

अनेक जन्म रूप बीथि (गलियां) में घूमते २ अनेक तरह के कष्टों को भोगते हुए अनेक प्रयत्नों से किसी तरह से इस दुर्लभ मानव जन्म को मैंने प्राप्त तो कर लिया किन्तु हा, बड़े खेद का विषय है कि, तथापि दुर्भाग्य वश आज तक भी श्री गिरिराज के निकट-भूमि में निवास करने का सौभाग्य नहीं प्राप्त होता है ।११

विष्णोर्निवासममपरे त्रिपुरारि वासं
ये संश्रयन्ति सुधिया विविना श्रयन्तु ।
अस्माकमेव गिरिराज तटान्तराले
कालन्तरेऽपि भवताज्जनि रुद्भिजेषु ॥ १२

यदा दिदृत्ते गिरिकन्दरायां
मिथो परिष्वक्त निजांगकान्त्या ।
तम क्षिपन्तं निबिडान्धकारे
तदा भवेन्मे सफलार्य्य-सेवा ॥ १३

जो कोई अपनी सुबुद्धि के द्वारा विष्णुलोक में अथवा शिवलोक में निवास करना चाहता है वे भले प्रकार करें किन्तु हम तो यही चाहते हैं कि, कालान्तर में जब कभी जन्म धारण करना पड़े तो यद्यपि कीट आदि देह मिलै तथापि श्री गोवर्द्धन के निकट आस पास की भूमि में ही होवे ।१२

मैंने जो अपने आर्य्य (पूज्य) पुरुषों की सेवा की है उसकी सफलता तभी समझूंगा जब कि, श्री गिरिराज की कन्दरा के गाढान्धकार में मिलन सुख प्राप्त करते हुए अपने श्री अंग की कान्ति से अन्धकार को विच्छिन्न करते हुए युगल स्वरुप का दर्शन प्राप्त करूंगा । १३

कदानुद्रक्ष्यामि गिरीन्द्रदर्य्यां
श्रीराधिकावल्लभराजपुत्रौ
द्वारिस्थिताहं दधती सपर्य्या
मार्य्याक्षिसंकोचनलब्धकार्य्या ॥१४

श्री गोवर्द्धन कन्दरासु विलसद्दोलान्तराले स्थितं
ताम्बूलं बहु पूग देव कुसुमै रेलान्वितैराचितम् ।
दत्तं श्री ललिताकरेण प्रियया चर्बन्तमत्यादरात्
वीक्ष्ये द्वारिगता कदानु रसिकं श्रीनन्दसूनुं निशि ॥ १५

पूर्व पद्य के अनुसार कवि पुनः वही अभिलाषा करता हुआ कहता है:——मैं उनके पूजा के कार्य भार को ग्रहण किये हुए, पूज्य सहचरी वर्ग के नयन संकेतानुसार कार्य परायण निकुंज-भवन के द्वारा-देश पर उपस्थित हो श्री गिरिराज की कन्दरामें श्री राधिका तथा श्री ब्रजेन्द्र नन्दन जी का शुभ दर्शन कब प्राप्त कर सकूंगा ॥ १४

मैं रात्रि के समय श्री गोबर्द्धन की विशाल-कन्दरा में श्री राधिका जी के साथ रत्न-हिंडोले पर विराजे हुए एवं श्री ललिता सखी द्वारा परम आदर सहित समर्पित,एला लवंग पूग मिश्रित ताम्बूल वीटी सेवन करते हुए रसिक शिरोमणि श्री नन्दनन्दन जी का शुभ दर्शन कब प्राप्त करूंगा ॥ १५

सुभग विहग बृन्दा लब्ध बृन्दानुबोधाः
रुचिर बहु विरावै रेतयोरालपन्ते ।
सहज रमण लीलां यत्र तच्छ्रीगिरीन्द्रो
भवतु गतिरभीष्टा देहभाजां निजाप्त्यै ॥ १६

निशीथे श्रीराधावदनशशिहावामृतमयै—
स्तरंगैरामुग्धं नयनशफरीवेगविभवैः ।
रतो जिह्वा-युद्धे विमल मणिमालापणमपि
न चक्रेऽङ्गीकारं तमपि किमु द्रक्ष्ये गिरिवरे ॥१७

जहां, प्रभात समय श्रीवृन्दादेवी द्वारा जगाए शुकसारिका, कोकिल, चकोर आदि मनोहर पक्षीगण मधुर शब्दों में श्री किशोर-युगल की स्वाभाविक केलि-लीला का मंगल गान करते हैं, वह श्रीगिरिराज, देहधारियों को निज मनोवाञ्छित गति प्राप्त करने में सहायक हो ॥ १६

जहां श्री गिरिराज पर्वत पर अर्ध रात्रि के समय, रतिक्रीडा में पारस्परिक वाग-विलास के युद्ध में श्री राधिकाजी के हावामृत मय मुखचन्द्र की तरंगों से मोहित हुए हुए, नयन रूप शफरी (मछलि)यों के वेग से उज्वल मणिमाला रूप पण (दाव) को जिन्होंने स्वीकार नहीं किया ऐसे श्रीनन्द नन्दन का मैं कब दर्शन प्राप्त कर सकूँगा । १७

नो गेहं भजतेऽनुराग गरिम द्राघीयसं पैत्रिकं
नो भुङ्क्ते रसमम्बयार्पितमहो यः संप्रयोगाकुलः ।
तास्मिन्नेति हृदाचले प्रियजनाह्वानातुरः सत्वरः
सोऽयं मे विदधातु केलि विभवं गोवर्द्धनाख्यो गिरिः ॥१८

प्रागुत्थाया नु राधापद कमल युगं सेव्यभूषां शुकाद्यै
राधायाज्ञां तदीयां गिरिवरशिखरे सुप्तमुत्थाप्य युग्मम् ।
नेपथ्यै भूषायित्वाऽशन मपि रुचिरं वीटिकामर्पयित्वा
मध्यान्हे स्वापयित्वा पुनरपि रजनीं स्वापयिष्ये कदानु ॥ १९

जो गाढ़-अनुराग में आकुल होकर न अपने पिता के घर पर ठहरते हैं न अपनी माता के द्वारा प्रदान किए हुए मिष्टान्न का आस्वादन करते हैं, बल्कि गृह कार्य में आसक्त रहते हुए भी निज प्रियजनों द्वारा आह्वान किए जाने पर शीघ्र ही श्री गोवर्द्धन पर्वत पर पहुँच जाते हैं ऐसे श्रीगिरिराज पर्वत मेरे लिए श्रीकृष्णचन्द्र की क्रीडा-वैभव का विधान करने वाले हों। १८

मैं प्रथम श्रीगोवर्द्धन शिखर पर शयन किए हुए श्रीकिशोर किशोरजी का उत्थापन कराकर पुनः उनकी आज्ञा प्राप्त कर श्री किशोरीजी के चरण कमलों का भूषण-वसन आदि द्वारा शृङ्गार कर के, सकल वेष-भूषा से विभूषित कर उन्हें रुचिर भोजन करा कर तत्पश्चात् ताम्बूल–बीड़ी अर्पण कर मध्याह्न समय शयन करा कर पुनः रात्रि के समय कब शयन कराऊँगा। १९

राधास्कंधे वामबाहुप्रकोष्ठं धृत्वा कृष्णो मन्दमन्दं विहस्य ।
पश्यन् प्राचीं पाटलां सुप्रभाते हास्यं लेभे यत्र तन्मे निजेष्टः॥ २०

ये ये पश्यन्ति दीपावलि मनु समये तत्प्रभातेऽन्नकूटं
स्नात्वा गङ्गोदके वै गिरिवरचरणां वीक्ष्य श्रीकुङ्कुमाक्तम् ।
भूयो भूयो नु तेषां पद कमल रजः शीर्ष्णि संधार्य शुद्धं
ध्याये कृष्णं गिरीन्द्रे विहगकुलरुताक्रान्तनीपाकुलाढ्ये ॥ २१

जहाँ श्रीगोवर्द्धन के शिखर पर प्रभात के समय श्रीकृष्णचन्द्र मन्द-मन्द हास्य कर के श्री राधिकाजी के कंधे पर अपने वाम वाहु प्रकोष्ठ (पहोंचे) का धारण कर पूर्व दिशा को रक्त वर्ण निहार पुनः मुस्कराने लगे, ऐसे श्री गिरिराज ही मेरे इष्टदेव हैं अन्य कोई नहीं । २०

जो-जो सज्जन भक्त दीपावली के अवसर पर श्रीगोवर्द्धन की शोभा का निरीक्षण करते हैं तथा उसके दूसरे दिन प्रभात के समय श्री मानसी-गङ्गा में स्नान कर कुंकुम-चन्दन-चर्चित श्री गिरिधारीजी भगवान के चरणों का दर्शन कर व्रज-भूमि में प्रसिद्ध अन्नकूटोत्सव का निरीक्षण करते हैं मैं उनके चरण-कमल की रज को बार-बार अपने शिर पर धारण कर बिहग वृन्द के वदन-निनाद से व्याप्त तथा कदम्ब वृक्ष समूह से सुशोभित श्री गिरिराज पर्वत पर श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् का ध्यान करता हूँ । २१

शम्भुः श्री हरिवल्लभेषु प्रवरः कायाधवाख्यस्ततः
कौन्तेया प्रवरास्ततोऽपियदवस्तेषूद्धवो मूर्त्तिमान् ।
बल्लव्योऽतिवरा यदुद्धवनुतास्ताभिस्तु संश्लाघितो
हन्तेत्यादि सदुक्तिभि र्विजयते यस्तं गिरिं संश्रये ॥२२

आर्य्यावर्त्त इतोऽधिको निगदितः पुण्यादिषाड्गुण्यत—
स्तस्मान्माथुर मण्डलं च प्रथितं वाराहदेवाश्रयात् ।
तत्र श्री मथुरा यतो हरि रभूत् तत्रापि वृन्दावनं
रास स्थानमतो यतः शयन भूः श्री भूधरो मे गतिः ॥ २३

श्रीकृष्णचन्द्रजी के प्रियतम भक्तों में श्रेष्ठ श्री शङ्कर जी हैं, उनसे भी उत्तम श्री प्रह्लादजी हैं, उनसे प्रवर कुन्ती–सुत पाण्डव हैं तथा उनसे भी श्रेष्ठ यादव–समुदाय, (जिनके पवित्र कुल में भगवान् ने जन्म ग्रहण किया था), उन यादवों में श्रेष्ठ श्री उद्धवजी हैं। उनसे भी प्रवर श्री व्रजांगनाएँ, जिनकी चरण-रज को उद्धवजी ने अपने मस्तक पर धारण कर अपने को धन्य माना। और उन श्री गोप–वधुओं ने 'हन्तायमद्रि' इत्यादि सदुक्तियों द्वारा श्रीगिरिराज की स्तुति की है और श्रीगोवर्द्धन को 'हरिदास वर्य्य' कहा है, इस प्रकार हरि–वल्लभों में सर्व शिरोमणि श्री गोवर्द्धन का मैं आश्रय लेता हूँ। २२

इस भूमण्डल में षड्–गुण पुण्यादि युक्त सर्वश्रेष्ठ पुण्य-

गायन्तं निज वेणुभिर्व्रज वधू नामावलीमादरात्
बिभ्राणं तिलक श्रियं मुनिजपाक्रान्तञ्च गुञ्जाभृतम् ।
धातु स्फीत तनुञ्च चन्द्रकधरं शाण्डिल्यवृन्दावृतं
ध्याये कृष्ण मिवाति सुन्दर तनुं गोवर्द्धनाख्यं गिरिं ।।२४

भूमि, आर्यावर्त है, उसमें भी श्री मथुरा-मण्डल प्रसिद्ध है (जहाँ श्री वाराह देव ने अवतार धारण किया है) उसमें भी मथुरापुरी की विशेषता है और मथुरा में भी जहाँ पवित्र रास स्थली में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने महारास किया है, वह श्री वृन्दावन-धाम श्रेष्ठ है और उस स्थल में भी जहाँ श्री श्यामसुन्दर विश्राम करते हैं वह श्री गोवर्द्धन गिरि सर्वश्रेष्ठ हैं, वही श्री गिरिराज सर्वतो भावेन मेरी गति है।२३

कवि इस श्लोक में श्री गोवर्द्धन की छवि का श्रीकृष्ण-

❀ हन्तायमद्रिरबला हरिदास-वर्यो,
यद्रामकृष्णचरणस्पर्श प्रमोदः
मानं तनोति सह गो गणयोस्तयोर्यत्
पानीय सूयवस कदर कन्द मूलैः ।

श्रीमद्भाग० स्क०१० अ० २२ श्लोक १८

स्वत्रामागत्य यत्राच्युत चरित चमत्कार विभ्रान्त चेता
क्रीडन्तं कृष्ण मस्तौत् दधिघृत सहितैः स्नापयित्वा पयोभिः।
श्रीगोविन्दाभिषेकं व्यरचय दचिराद् ब्रह्मरुद्रादि देवैः
साकं गोवर्द्धनाद्रौ मणिमयशकलैः शोभिते चित्तमःस्ताम्॥२५

चन्द्रजी के समानता के रूपक से वर्णन करता है:—मैं श्रीकृष्ण चन्द्रजी के समान अत्यन्त सुन्दर शरीर वाले श्री गोवर्द्धन का ध्यान करता हूँ जो अपने वेणु वृक्षों के द्वारा व्रज-गोपियों की नामावली का आदर के साथ गान करते हुए, तिलक (नामक) वृक्ष की शोभा को धारण किए हुए, अगस्त तथा जपा (कुसुमों) से छाए हुए गुंजा (मालाओं) को धारण किए हुए, गैरिक हरताल आदि धातुओं से मण्डित शरीर वाले, मयूर-पिच्छों को शिर पर धारण करने वाले एवं विल्व तथा तुलसी (विटपों) से जो व्याप्त हो रहा है। २४

अनेक मणि खण्डों से सुशोभित जिस श्री गोवर्द्धन पर्वत-शिखर पर भगवान श्री कृष्णचन्द्र के गोवर्द्धन-धारण आदि अद्भुत-चमत्कारों से भ्रान्त-चित्त होकर देवेन्द्र ने ब्रह्मा, रुद्र आदि देवगण के साथ आकर गोपाल बालकों के साथ क्रीड़ा करते हुए, श्रीकृष्णचन्द्र जी का दधि, घृत सहित दिव्य गंगोदक से अभिषेक किया और "गोविन्द" नाम से उनकी स्तुति प्रार्थनायें की थीं उन श्री गिरिराज में मेरा मन लगा रहे। २५

यत्कन्दरासु रमणी रमणीय केलि
लोलालक भ्रमर चुम्बित माननाब्जं ।
विभ्राणमम्बुरुहलोचनमेव कृष्णं
पश्यन्कदा शिखरि-राज तटे पतिष्ये ।।२६

हरिप्रिये श्री गिरि कन्दराले
विमूर्छितः कृष्ण, हरे, मुरारे !
इति ब्रुवन्नेव यदा पतिष्ये
तदा कृती स्यां न किमन्यचेताः ।। २७

उस श्री गिरिराज की कन्दराओं में व्रज-सुन्दरियों के साथ, रमणीय केलि करते हुए, भ्रमर-विचुम्बित चञ्चल अलकावली मण्डित मुख सरोज को धारण किए हुए कमल-लोचन श्री कृष्णचन्द्र के दर्शन करता हुआ किस दिन श्री गोवर्द्धन के निकट अपने देह का पात करूँगा। २६

कवि कहता है कि, मेरे मन में और कुछ नहीं है, केवल-यही है कि, मैं श्रीकृष्ण चन्द्र जी के परम-प्रिय श्री गिरिराज की कन्दरा में, हे हरे, हे मुरारे ! ऐसे वचन उच्चारण करता हुआ प्रेम-मूर्छित होकर जब गिर जाऊँगा तभी अपने को कृतार्थ मानूँगा। २७

श्रीराधाधर सीधु नेत्र चषकैः पीत्वागमन्मत्ततां
कृष्णः काम कला विलास निपुणो यत्कन्दरा मन्दिरे ।
नो सस्मार दिवा निशं च ललिता दत्तै स्तु कालोचितै-
र्भोगैरेष विराजते मणिधरो गोवर्द्धनः क्ष्माधरः ॥ २८

यस्मिन्मित्रगणेन साकमकरोच्छ्रीरोहिणेयो जल-
क्रीडा मुत्पल संज्ञितां सुरुचिरां दिव्यां सदा माधवे ।
मासि क्ष्मातलविश्रुतामिति यतो तीर्थन्तु सांकर्षणं
प्रादुरभूज्जनसंघपापदहनो भूयात् स शैलोगतिः ॥ २९

जिस श्री गिरराज के कन्दरा-मन्दिर में, काम-कला विकास में निपुण श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने निज-नयन सम्पुटों द्वारा श्री वृषभानु नन्दिनी जी के अधर-सुधा को पान कर (प्रेमोन्माद दशा में) श्री ललिता सखी द्वारा समयोचित भोग आदि समर्पित किए जाने पर भी अनेक रात्रि-दिवसों को जाते हुए नहीं जाना था, आज भी वही मणि-मण्डित पर्वत राज श्री गोवर्द्धन शोभा पा रहा है। २८

जिसकी बिशाल कन्दरा में श्री बलदेव जी अपने मित्र गोप-बालकों के साथ बसन्त में प्रति वर्ष लोक विख्यात-उत्पल-नामक जल-क्रीडा किया करते हैं, इसी कारण उसका नाम 'संकर्षण-तीर्थ' पड़ गया है, जिसमें स्नान करने से अनेक पाप दूर होते हैं वही श्री गोवर्द्धन-शैल मेरी गति (सर्वस्व) है। २९

बिबुध तरु बिटङ्कितः प्रथम चत्तु रागादिभूः
पशूप नव बल्लभा नयन रोचिषा रोचितः ।।
विमल मणि शिलामयः सकल शैल चूड़ामणि
र्भवतु सदनमिन्दिरा कृत निकेतकं मामकम् ।। ३०

प्रपन्न जन वत्सलः सकल गोप लीला कलः
व्रजेन्द्र मख तुन्दिलः सुरसरित्प्रवाहामलः ।
अशेष व्रज सुन्दरी विविध पक्वभक्ष्याकुलः
स मामवतु शैलराट् कलुष काल लीलायितम् ।। ३१

जो देव वृक्षों से सुशोभित है, जिसको सर्व-प्रथम सूर्य देव की किरणें रञ्जित करती हैं श्री व्रजेन्द्र-नन्दन युगल-किशोर की नयन कान्ति से जगमगाने वाला, मणिमय शिला-खण्ड से मण्डित, सर्व-शैल शिरोमणि और जिसे श्री लक्ष्मीदेवी ने तप साधनार्थ निज निवास स्थल बनाया है वह श्री गोवर्द्धन मेरा निवास-स्थान होवे । ३०

जो शरणागत-जन वत्सल, गोप-बालकों के मनोहर लीला निकेतन श्री नन्दराय जी द्वारा किये हुए गोवर्द्धन-पूजा नामक यज्ञ को स्वीकार करने वाले, जिसमें मानस-जान्हवी का प्रवाह बहता रहता है तथा अनेक व्रज-रमणियों द्वारा अर्पण किए हुए नाना विधि पक्वान्न ही (भक्ष्य-भोज्यादि) पदार्थों को अंगीकार करने वाला ऐसा श्री गोवर्द्धन-शैलराट्, पाप रूप काल (कलियुग) से जर्जरित मेरी रक्षा करे ।३१

नन्दाह्लादविवर्धनस्त्रिजगतामानन्दसंबर्धनः
श्री राधारतिबर्धनः प्रियजनानंगोत्सवावर्धनः ।
प्रेमीप्रेमसुवर्धनः स्वसुहृदां लीलाम्बुधे र्वर्धनः
गोपी जीव्य सुशस्य वर्धनपरो गोबर्धनः पातु नः ॥ ३२

गेहात्कन्दुक मानय प्रिय सखे त्वं देव-प्रस्थ प्रियां
वंशीं पुष्पसरोवरात् सुबल हे श्री रौहिणेयं वनात् ।
तानेवं बहु वञ्चयन् गिरिमगाद्यत्केलिलिप्सु र्हरिः
तद्राधा मिलन-स्थलो विजयते गोवर्धनः शैलराट् ॥३३

श्रीनन्दराय को आनन्द-वर्द्धन, तथा त्रिभुवन को सुख देने वाले, श्री राधिकाजी के प्रेम-भाव को बढ़ाने वाले तथा उनके प्रिय श्री श्याम सुन्दर के अनङ्ग-उत्सव को वृद्धि करने वाले, प्रेमियों के हृदय में प्रेम बढ़ाने वाले, श्री कृष्णचन्द्र के मित्रवर्ग के लीला-वारिधि को बढ़ाने वाले, गोप गोपियों के जीवन शस्य (आदि) के बढ़ाने वाले श्री गोवर्द्धन हमारी रक्षा करें। ३२

"हे प्रिय सखे, मैं अपनी कन्दुक (गेंद) घर पर भूल आया हूँ उसे ले आवो, और हे देवप्रस्थ तुम पुष्पसरोवर (कुसुम-सर) पर से मेरी प्यारी-मुरली को ले आओ और हे सुवल तुम बन में से श्री बलदाऊ जी को बुलाने जाओ इस तरह श्रीकृष्ण-चन्द्र अपने सखागणों की प्रवञ्चना करके जिनकी प्रेम प्राप्ति की लालसा में जिस पर्वत पर पहुँचते हैं वह ही राधिकाजी का मिलन स्थल (संकेत-स्थल) शैल राज श्री गोवर्द्धन विजय को प्राप्त हो। ३३

कुरवक बकुलाम्रा नम्र शाखाधिरूढैः
शुक पिक कलविंकै सौरतानन्दमत्तैः ।
निज-निज कलरावैः कृष्णलीलां पठद्भिः
शिखरि निकर मौलिः स्तूयते यो गति र्नः ॥ ३४

रति प्रिय कला निधिः प्रिय ललाम वारांनिधिः
व्रजेन्द्रवद्गुण निधिः सकुसुम द्रुमानां निधिः ।
निधान निधि निर्गमा कुलित चेतसां सन्निधि
र्विलास निधि रेतुमे मनसि कोऽपि भूभृन्निधिः ॥३५

जहं कुरवक, वकुल और विनम्र शाखा वाले आम्र आदि वृक्ष समूह की नम्र शाखाओं पर बैठ कर शुक, कोकिल, कल-विंक आदि पक्षी प्रेमानन्द मत्त हो मनोहर ललित-कल शब्दों में कृष्णचन्द्र की लीला को सुनाते हुए मानो उस श्री गिरराज का स्तव-पाठ कर रहे हैं वह श्री गोवर्द्धन हमारी गति है। ३४

मेरे मन में कोई एक निधि-स्वरूप मनोहर पर्वत समा रहा है, जो काम की ललित कलाओं का निधि (खजाना) है, अखिल मनोहरता का समुद्र है, व्रजेन्द्र श्री कृष्णचन्द्र के समान गुणों का निधि है, कुसुमित वृक्षों का निधि है अनेक मणि-आकरों का निधि है संसार से व्याकुल हृदय प्राणी—जिसका आश्रय लेकर सुख-शान्ती लाभ करते हैं और भगवान् श्रीकृष्ण का अनेक लीला-विलासों का निधि है। ३५

दीव्यत्स्वर्णवपुः सरोरूहमुखः शष्पादि धम्मिल्लकः
जीवं जीव विलोचनौ मृदुलता वाहु स्व वक्षोजकः ।
भूर्ज्जत्वग्वसनैर्विशोभिकटकः काञ्ची खगालीध्वनिः
रासोल्लासविलोकनाय गिरिराट् यः स्त्रीयति तंस्तुमः ॥ ३६

नित्यं श्रीहरिदेवपट्टमहिषी बिव्वोक मुद्वर्धनं
सारी कीर मयूर कोकिल कलध्वानैक संवर्द्धनं ।
पञ्चक्रोशमितेऽपि भूमिविवरे नन्दादिगो वर्धनं
प्रातः संस्मर हे मनः शिखरिणं गोवर्धनं सद्धनम् ॥ ३७

जगमगाते हुए स्वर्णमान शरीर जो (जहां–तहां) कमल खिले हैं वेही कमल मुख, हरित–श्यामल तृण समूह ही केश–समूह, जीवित जीव समुदाय ही नयन, कोमल लतायें ही वाहुयें……सो ही कुच कलश, भूर्ज्ज पत्रादि वृक्षों की त्वचा रूप विविध वस्त्रों से शोभित कटि प्रदेश, कलरव परायण विहंग पंक्ति ही कौंधनी, आज मानों भगवान् के रास विलास के अवलोकनार्थ मनोरम ललनास्वरूप धारण किए हुए विराजमान हैं ऐसे श्री गोवर्द्धन को हम स्तवन करते हैं । ३६

हे मन, प्रातःकाल के समय अपने परम श्रेष्ठधन श्री गोवर्द्धन का स्मरण कर, जो नित्य ही श्रीहरिदेव भगवान की पट रानी श्री राधिकाजी के लीला को बढ़ाने वाला और शुक सारिका कोकिल मयूरों की कल–ध्वनि को बढ़ाने वाला और पांच कोस-प्रमाण भूमि–विवर में श्री नन्दराय आदि व्रज–गोपों के गोबर्द्धन को बढ़ाने वाला अर्थात गौ–वत्स आदि हरित तृण तथा निर्झर–नदी सरोवरों का निर्मल पय–पान कर इसी में निवास करते और वृद्धि प्राप्त होते हैं । ३७

न देवै र्नो वेदै र्न खलु तपसाकृष्टवपुषा
न योगै र्नो यागै र्न व्रत सुरभी दानजफलैः ।
जना नैति प्रोच्चै र्निगम नमित गोप तनयं
फलं यच्छ्रो गोवर्धन शिखरि सेवा दिशतु मे ॥ ३८

गोपी मुखाम्भोज विलास हेतौ—
श्री कृष्ण शृङ्गार रसैक केतौ ।
गोपाल वृन्दार्ज्जित केलिसेतौ
गोवर्धनाद्रौ रमतां मनो मे ॥ ३९

गोप तनय श्रीव्रजेन्द्र नन्दन, जिनको वेद आदि भी नमन करते हैं उनको मनुष्य न देवों की आराधना से पा सकते हैं न वेदादि के स्वाध्याय से और अपने देह को तप से कर्षित करने से, न योग-साधना से, न याग-यज्ञ करने से और न गौओं का दान करने से उसी सर्वोच्च-फल को श्री गोवर्द्धन की सेवा मेरे लिए उपलब्ध करे। ३८

कवि इस पद्य में पुनः वही अभिलाषा प्रगट करता है:—कि जो श्री गोवर्द्धन व्रज-सुन्दरियों के मुख कमल के बिलास वाग्-विलास का कारण है, श्रीनन्द नन्दन के शृङ्गार रस का केतु (ध्वज) है तथा गोप-बालक वृन्द के एकत्र क्रीडा करने का एकमात्र सेतु है उसी पर्वत राज में सदा मेरा मन रमण करता (आसक्त) रहे। ३९

श्री राधा वदनेन्दु मन्द हसित प्रेक्षामृतांभोनिधेः
पातुं नेत्र चकोरकौ प्रचलितावेतौ सतृष्णौ हरेः ।
तावादाय तदीय दाव दहनं संभोजयन्त्यस्तु याः
दर्य्यां यस्य विभाति सोऽयमचलो तं नाश्रयेत् कः कृती ॥४०

यत्प्रस्तरे श्रीब्रजराज सूनुः
स्वपित्यलं तल्पगतेव नित्यं ।
तदे तदाम्रा दिकपित्थ निंबै
र्विभूषितो मामवताद् गिरीन्द्रः ॥४१

ब्रजेन्द्र नन्दन श्रीकृष्णचन्द्र के सतृष्ण लोचन चकोर, श्री राधा वदन-चन्द्र के मन्द हास्य को निरीक्षण कर उस अमृत सिन्धु के पान की लालसा से उसकी ओर प्रस्थित हुए उनको लेकर जो (श्री राधिकाजी) हाव-भाव आदि दावानल का सेवन कराती हैं, ऐसे श्री राधा-कृष्ण जिसकी सुन्दर कन्दरा में शोभा पा रहे हैं, संसार में ऐसा कौन चतुर पुरुष नहीं है जो ऐसे श्रीगोबर्द्धन का आश्रय न ग्रहण अर्थात् सभी को करना उचित है । ४०

श्री व्रजेन्द्र-नन्दनश्यामसुन्दर जिस पर्वतेन्द्र श्री गोबर्द्धन की स्वच्छ शिला-स्तल पर नित्य ही सुकोमल पर्यङ्क के समान प्रगाढ़-निद्रा सुख का उपभोग करते हैं, आम्र कपित्थ निम्ब आदि वृक्ष-वृन्द विभूषित वह श्रीगिरिराज मेरी रक्षा करे । ४१

कान्तक्रोडगता विभाति वद का त्वं भो न चन्द्रावली,
दृष्टा कैतवता तवाद्य शठ हे त्वंवै मृषा जल्पसि ।
इत्थं श्री वृषभानुजानुगदितं श्रुत्वा तनोत्कौतुकं
या यत्कन्दरमन्दिरे स गिरिराट् भूयान्ममेष्टागतिः ॥ ४२

नेच्छामि स्वच्छतर नन्दन केलि लक्ष्मीं
वाञ्छामि नो शिवपुरी जनितं निवासं
पृच्छामि नैव विनता सुत केतु लोकं
गोवर्धन यदि भवेन्मम सन्निवासः ॥ ४३

श्री राधिकाजी बोली—प्रियतम के अङ्क में शोभा पाने वाली आप कौन हैं ?' बीच ही में श्यामसुन्दर कहने लगे—'अजी, नहीं यह चन्द्रावली नहीं है।' श्री राधा—'अजी, वञ्चक राज ! आप तो यों ही मिथ्या वचन कहा करते हैं, आज आप की धूर्तता देख ली गई है।' ऐसे श्री वृषभानु-नन्दिनी के वचन को सुन जिसकी विशाल कन्दरा मन्दिर में श्री श्यामसुन्दर ने एक अपूर्व कौतुक खड़ा कर दिखाकर आश्चर्य प्रदर्शन किया वही पर्वतराज गिरिराज मेरी अभि-लाषाओं का केन्द्र होवे। ४२

यदि मुझ को श्री गोवर्द्धन में निवास करने का सौभाग्य प्राप्त हो सके तो मैं स्वच्छतर नन्दन वन के क्रीडा-सुख की नहीं वाञ्छा करता हूँ, न शिव-लोक के निवास को चाहता हूँ और न श्रीविष्णु-लोक के निवास की ही इच्छा करता हूँ। ४३

करक पवन शम्पा पात धारा प्रपातान्
हिम निकर विषाणानातपादि प्रतापान् ।
स्वयमपि सहमानो प्राणिनां दुःख जालं
त्वपनयति गिरीन्द्रः सर्वदा मे मुदेऽस्तु ॥ ४४

धारापातमयाद्घटोद्भवमिवांभोधिञ्च शक्रस्य यः
गोष्ठं तूल मिवाधिरूह्य समधाच्छ्रीकृष्णवाहौ स्वयम्
गोष्ठच्छेदनलब्धगर्वमभिनत्किं वेति शेषादसौ
श्रीमच्छैलपतेरमन्दमहिमा कोप्येष लोकोत्तरः ४५

जो स्वयं वर्षोपल (ओला) प्रहार, झंझा—वर्षा–पवन, उल्का (विद्युत) पात तथा अखण्ड धाराओं आघातों को एवं सूर्यातप (लूएँ) आदि कष्टों को सहन करता हुआ प्राणि–मात्र के दुःख संतापों को दूर करता रहता है, वह श्री गोवर्द्धन मुझ को आनन्ददायक हो । ४४

शैलराज श्री गोवर्द्धन की यह अलौकिक महिमा देखने में आई है कि, जो व्रज में कुपित इन्द्र के वर्षा सन्ताप को 'समुद्र को अगस्त्य ऋषि की भांति' पान करने में समर्थ हुए तथा स्वयं तूल (रुई) के समान हल्का स्वरूप धारण कर श्रीकृष्णचन्द्रजी के कर कमल पर विराज कर एक सप्ताह पर्यन्त (व्रज क्या तुच्छ वस्तु है इस प्रचार के) महेन्द्र के दर्प को दलन करने में समर्थ हुए । ४५

प्रातः स्मरामि हरिदेवपदारविन्दं
मंजीर मंजुल कल ध्वनि दिग् वितानैः ।
संभूषितञ्च सुतरान्तर लक्ष्म लक्ष्य
गोवर्धनं शिखरिशेखरसेव्यमानम् ॥ ४६

रासं क्वापि रहः क्वचापि रचना दीपावलेः क्वापि वा
जैह्मां पाणि निपीडनं क्च तयोर्होलोत्सवं क्वापि वै ।
अम्बुक्रीडनकं कुतोऽपि रमणं कुत्रापि दोलोत्सवं
द्रक्ष्ये हन्त कदा भ्रमन् गिरिदरीकुंजे निकुंजेशयोः ॥ ४७

मैं प्रभात समय श्री हरिदेव-भगवान् के उन चरण कमलों को स्मरण करता हूँ जिनमें धारण की हुई मञ्जुल मञ्जीर (झांझन) की मनोहर ध्वनि दिगन्त तक व्याप्त होती रहती है और जिनके ध्वज-वज्रांकुशादि अनेक चिह्नों से अङ्कित होकर अनेक पर्वतेन्द्रों से सेव्य मान यह श्री-गोवर्द्धन सुशोभित हो रहा है। ४६

मैं श्री पर्वतराज की विशाल कन्दरा निकुञ्जों में भ्रमण करता हुआ कहीं पर श्री निकुञ्जेश्वर युगलजी की एकान्त क्रीडा को कहीं पर दीपोत्सव की मनोहर रचना को, कहीं पर उनके जिभाई, तथा हाथों का मीड़न को, कहीं पर उनके परस्पर होलिकोत्सव को तथा कहीं पर जल-क्रीडा एवं किसी स्थल में उनके दोलोत्सव को कब देख सकूँगा। ४७

हे गोप भूप सुसुखांबुराशे
हे कृष्णवंशोडित सुप्रकाश ।
हे शैल, हे गोकुलमण्डनाद्रे
द्रागेतु मे चेतसि ते स्वरूपं ॥ ४८

अक्षण्वद्भिरलक्ष्यमेव हृदये लक्षं हि लब्धं पथि,
बृन्दारण्य पथोन्मुखेन हि मया स्वप्ने नु यत्कौतुकं ।
तत्वं तत्वविदामतत्वमविदां तच्छ्रीमहीन्द्राधिपः
शीघ्रं मे विदधातु धातुविशदः शैलेश्वरोऽसौ भवान् ॥४९

हे श्री नन्दरायजी के सुख के समुद्र ! हे श्रीकृष्णचन्द्रजी की मुरली द्वारा घोषित प्रकाश वाले, हे गोकुल के शृङ्गार, हे शैलराज, मेरे हृदय में आपका स्वरूप शीघ्र ही प्रकाशवान (जाग्रत) होवे ॥ ४८

मैंने श्री वृन्दावन के मार्ग में गमन करते हुए मानो स्वप्न में यह कौतुक देखा ? कि 'साधारण नेत्रधारी नर-नारी उसे नहीं देख सकते। हाँ, सहृदय-भक्त ही उसे लख पाते हैं, वही तत्ववेत्ताओं का तत्त्व है और अज्ञानियों की जानकारी से (दुरूह) दूर रहता है यह जो गैरिक, हरिताल आदि धातु-मण्डित पर्वतेन्द्र श्री गोबर्द्धन है जो कि आप ही का स्वरूप है वह मेरे वाञ्छित सिद्ध करे । ४९

कान्ता स्फीत लता प्रतान निविड ध्वांतार्तिसंपादके
झिल्ली पेचक तुल्य मानव मुखोद्भूतैस्तु दावानलैः ।
साध्ये वैभवकानने विधिवशात् प्राप्तं यतः श्री गिरे
कालेभारि निनाद खिन्न हृदयं त्वं मां तटस्थं कुरू ॥ ५०

स्मृत्युक्तान्सकलान्विहाय विदितान् धर्मान् स्ववर्णोचितान्
पारं पर्यगतान् मया विमतिना दौर्जन्यमङ्गीकृतं ।
त्वत्पादाश्रयणात् शिलोच्चयपते ज्ञात्वेतिमामुद्धर
वज्रीवोरगमिन्दुमास्फुजिदिवत्त्वेतद्धिसल्लक्षणम् ॥ ५१

हे पर्वतेन्द्र श्री गोवर्द्धन, मैं भाग्यवश इस संसार रूप भयङ्कर अरण्य में आ फँसा हूँ, जहां नारी रूप लहराती लताएँ फैली रहने से चहुँओर दुखदायी निबिड़ अन्धकार छाया हुआ है और झिल्ली उल्लू के समान अनेक दुष्ट मनुष्यों के मुखों से उत्पन्न दानव दावानल—दहकती है और एक ओर काल-रूप मृगेन्द्र के गर्जन से मेरा दिल दहल रहा है, ऐसी दशा में पड़े हुए मुझ को हे भगवन् गिरिराज ! आप ही आश्रय देकर रक्षा करो । ५०

हे पर्वतराज, मैं बड़ा कुबुद्धि नीच हूँ जिसने धर्म-शास्त्रोक्त परम्परागत स्ववर्ण धर्मों का त्याग कर दुर्जनता को अङ्गीकार कर लिया, अब अपनी दशा जान कर आपके चरणों का आश्रय लिया है, जैसे इन्द्र ने तक्षक को और बुद्ध ने चन्द्र का उद्धार किया उसी प्रकार आप मेरा उद्धार करो शरणागत की रक्षा करना ही सज्जनों का लक्षण है । ५१

शैलं शैलसमं ब्रुवन्ति नितरां ये ते विदग्धाः क्षितौ
तन्मायापिहिताक्षिपद्धतिपरा तानेव याचे चिरं ।
मा मा निन्दथ भ्रातरो गिरिवरं पश्यत्वागैत्य भो,
राधाकृष्णरसैकलुब्धमनसां जाड्यं दधानं परम् ॥ ५२

केचिद्भजन्ति कृतिनो गिरिजामथान्ये
सेवन्ति भर्गमपरे दिवसाधिनाथं ।
एके गणाधिप सुराधिप शङ्करादीन्
सेवन्त्वहं गिरिवरं शरणं ब्रजामि ॥ ५३

जो धरणी तल पर अचतुर कहलाते और भगवान की माया से जिनकी दृष्टि मलिन हो रही है, वे सब पर्वतों को एक समान ही मानते हैं, मैं उन से ही करबद्ध प्रार्थना करता हूँ कि हे बन्धुओं ! श्री गिरिराज की निन्दा न करो और यहाँ आकर इसकी मनोहर दर्शनीय शोभा को निरीक्षण करो कि श्री राधा-कृष्ण प्रेमरस में मग्न होकर यह श्री गोवर्द्धन प्रेमोन्माद से जड़ होकर विराजमान है । ५२

कोई चतुर जन गिरिजा की आराधना करते हैं कोई श्री शिवजी को तथा कोई सूर्य-भगवान की सेवा करते है । कोई वह हैं जो गणनाथ की कोई देवेन्द्र की तथा शङ्कर जी आदि देवताओं की आराधना करते, अस्तु, जो करते हैं किया करें मैं श्री गोवर्द्धनकी शरण में जाता हूँ । ५३

सम्प्राप्याखिलकामदं सुरगणैः प्रार्थ्यं नृदेहं क्षितौ
न ध्यातं हरिदेवपाद युगलं नो वर्णितं तद्यशः ।
गाङ्गेयं जलमच्छमद्रिसविधे स्थित्वा निपीतं न यै
र्यात्रानैवकृता व्रजं व्रजजनैः साकं तु तैःकिं कृतम् ॥५४

पीठे रत्नसुघट्टितेऽति सुषमा सोमा स्थिता काप्यसौ
तस्याग्रे सलयञ्च नृत्यति तमो राशिश्च कोप्यादरात् ।
तस्मिन्नेतु मनो मनोहरतरे गोवर्धन त्वत्कृपा
पांगज्योत्स्निकया न काचिदपरा वाञ्छास्ति मे तद्दते ॥५५

जिन्होंने इस पृथ्वी तलपर अखिल कामप्रद, देवगण प्रार्थनीय, मनुष्य जन्म पाकर श्रीहरिदेव भगवान के चरण युगल का ध्यान न किया, तथा जिह्वा से उनका यश-गान न किया एवम् श्री गिरिराज के निकट विराजकर मानस गंगा का निर्मल जल-पान न किया तथा व्रजवासियों के साथ श्री व्रज भूमि का परिक्रमण नहीं किया तो उन्होंने क्या किया । अर्थात कुछ नहीं किया और मानव-जन्म को बृथाही गँवाया । ५४

दिव्य रत्न जड़ित सुन्दर सिंहासन पर यह सुखमा की सीम कोई विराजमान है और उनके सम्मुख बड़े आदर तथा तन्मयता पूर्वक कोई तमो-राशि सा जो नृत्य कर रहा है, उसी विश्व मनो मोहन में मेरा मन लगा रहे, हे श्रीगोवर्द्धन यदि मुझपर आपका कृपा कटाक्ष की छटा है तो मैं केवल इतनी ही वाञ्छा करता हूँ मुझे और किञ्चित् भी अभिलाषा नहीं है । ५५

ये ये श्री हरिदेव पाद-युगल ध्यानैकनिष्ठा नराः
नित्यं श्री रमण स्थलीं निवसितुं वाञ्छन्ति वृन्दाटवीं ॥
ते ते गोप महेन्द्र नन्दन पद द्वन्द्वैक भक्ति प्रदं
श्रीगोवर्धन माश्रयन्तु सुहृदामानन्दसंवर्धनम् ॥ ५६

यावन्नैव भवेच्छ्रुतौ बधिरता वक्त्रे च वा मूकता
शीर्षण्यैव न कम्पता जरठता देहे न नेत्रेन्धता ।
तावत्तद्गुणमाधुरीं शृणु सखे त्वं वर्णयानम्य च
गत्वा पश्य तदीय रूप ममलं गोवर्धनाद्रेर्मनाक् ॥ ५७

श्री श्री हरिदेव-भगवान के चरण युगलों के ध्यान परायण जो जो भक्तजन हैं वृन्दावन रूप-नित्य-विहार श्री युगलकिशोर के स्थान में निवास करने की वाञ्छा करते हैं उनको उचित हैं कि वे अपने मित्र गोप-कुमारों के आनन्द-दायक गोपेन्द्र-नन्दन श्रीकृष्णचन्द्रजी के चरण युगल की भक्ति प्रदान करनेवाले श्री गोवर्द्धन का आश्रय ग्रहण करें । ५६

हे सखे ! सुन जब तक तेरे कानों में बधिरता न हो, मुख में मूकता न हो, शिर में कम्पता न हो, देह में बुढ़ापा न हो, नेत्रों में अन्धता न हो तब तक तू श्री गोवर्द्धन-शैलराज की गुण-माधुरी को कानों से श्रवण कर मुख से वर्णन कर तथा देह से नमन कर और उसके निकट पहुंच कर उस विमल-मनोरम रूप का एक वार तो दर्शन कर ले । ५७

ईशेनास्य विमुक्तये निज मुखैः सार्धं त्रिकोटिर्बुधाः
प्रोक्तं साधनमर्थिनां सुसुहृदां ते कष्ट साध्याः क्षितौ ॥
श्री गोवर्धनसेवनञ्च सुधियां वर्वर्ति सर्वोपरि
चेत्थं तानपहाय यः श्रयति तं सोस्माकमानन्ददः ॥ ५८

कृच्छ्रार्द्धकृच्छ्र शिशुकृच्छ्र महापराक
चान्द्रायणाद्यखिलशुद्धिकरैर्न येषां ।
शुद्धयेत चेतसि गतं कलिकल्मषं यत्
तच्छुद्धिमाभजति भूधरसंश्रयेण ॥ ५९

ईश्वर ने पृथ्वीतलपर इस जीव को मुक्ति प्राप्त करने के हेतु प्रार्थी सदस्यां के लिए साढ़े तीन करोड साधनों का निज मुख से कथन किया है जोकि सभी कष्टसाध्य है किन्तु बुद्धिमान पुरुषों को उनसब साधनों के सर्वोपरि श्री गोबर्द्धन की सेवा (पूज्य) ही श्रेष्ठ है अतः जो भक्त उस सब साधनां को त्यागकर श्री गिरिराज का आश्रय लेता है वही हमको आनन्द दायक है ।५८

जिन पुरुषों के हृदयों में व्याप्त कलि के कल्मष (पाप) सब को शुद्धि करने वाले कृच्छ्र, शिशुकृच्छ्र, महापराक तथा चान्द्रायण आदि धर्म शास्त्रोक्त महाव्रतों के भी नहीं होय है उनकी शुद्धि केवल श्री गिरिराज का आश्रय लेने से सहज में ही हो जाता है । ५९

सीमन्त पुंसवन मुण्डन कर्णवेध
यज्ञोपवीत करपीडनकादिकेषु
एकोऽपि कोऽपि यदि जन्मनि यस्य पुंस
स्तत्रैव सिद्धयति स मे किल वल्लभोऽद्य ॥ ६०

धर्मोऽयं गृहमेधिनां निगदितं श्रीव्यासदेवादिभि
र्वर्णानामथ पापिनाञ्च शुचये कृच्छ्रातिकृच्छ्रं जगुः ।
प्रोक्तं श्री हरिदाससेवनमिदं कृष्णैकसंसेविनां
निश्चित्योक्तमथो परात्परतरं धर्मोऽस्ति गोवर्धनः ॥ ६१

किन्नैव सन्ति गिरयो मलयाचलाद्याः
ख्याता परार्तिहरणैक दृढव्रता ये ।

जिस पुरुष के जन्म में सीमन्त, पुंसवन, मुण्डन, कर्णवेध, उपनयन, विवाह आदि संस्कारों में से एक भी कोई संस्कार श्री गोवर्द्धन में हो सकता है वही पुरुष यहाँ आकर सिद्ध होता है वही मेरा प्रियतम है। ६०

श्री व्यासदेव आदि आचार्यों ने गृहस्थाश्रमी पुरुषों के लिए धर्म के जो निरूपण किए हैं तथा पापियों के पापों के निवृत हेतु कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र आदि व्रत प्रतिपादन किये हैं किन्तु उनमें भी श्रीकृष्णचन्द्र के अनन्य भक्तों के लिए श्री हरि के दासों (भक्तों) की सेवा करना ही बतलाया है और यह भी निश्चय-कथन किया है कि, श्री गोवर्द्धन का सेवन करना तो परात्पर अर्थात् परमोत्तम धर्म है। ६१

संसार में मलयाचल, विन्ध्याचल आदि अनेक शैल-प्रवर मानवों के दुःख दूर करने के लिये विख्यात हैं अर्थात् लोक-प्रसिद्ध हैं किन्तु हम तो सब से श्रेष्ठ श्री गोवर्द्धन को

तेष्वेव भूधरपतिं प्रतिनन्दयामो
गोवर्धनं युगलकेलिकलानिधानं ॥ ६२
वहवः सन्ति गिरयः भवार्त्तिशमनाः नृणां ॥
तेषु गोवर्धनं वन्दे कृष्णकामार्तिभञ्जनम् ॥ ६३
ये कृष्णाम्बुद चातकी कृत हृदा गूढार्चिषो वैष्णवाः
वृन्दारण्य विलासिनी पद युग द्वन्द्वैक बद्ध स्पृहाः ।
ये गोवर्धनवासिनो खग मृगाः कीटा नटा मर्कटा
स्तेसर्वेऽपि दिशन्तु भूधरतटीं वासं निवासाय मे ॥६४

ही प्रशंसनीय मानते हैं जो शैलराज श्री युगल-किशोर भगवान की केलि-कला का निधि है। ६२

लोक में बहुत से पर्वत हैं जो मानवों को भव-बाधा को शमन कर के शान्ति प्रदान करते हैं किन्तु मैं तो उन सब में श्रेष्ठ श्री गोवर्द्धन की ही वन्दना करता हूँ जो श्रीकृष्णचन्द्र जी को काम बाधाओं को विदूरित करने वाला प्रसिद्ध है अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्र ने इसी पवित्र-स्थान में श्री राधा नाम की साधना कर के योगेश्वर का पद प्राप्त किया था इसी पवित्र स्थली में उन्होंने व्रज-रमणी वृन्द के साथ महारास की योजना कर के काम विजय की साधना की तभी तो उनकी महिमा को पुराण पुकार-पुकार कर कह रहे हैं यथा द्वारका में उनका प्रभाव—'पत्न्यस्तु षोडश सहस्र अनंग वाणै र्यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैर्नविभ्व्य ।' अर्थात् द्वारकापुरी में षोडश सहस्र रानियाँ भी जिनके मन में विकार उत्पन्न करने को समर्थ नहीं हो सकी। ६३

वृन्दावन विलासिनी श्री वृषभानु नन्दिनी के चरण-युगल में अनन्यता पूर्वक निवद्ध अभिलाषा वाले, श्रीकृष्ण-श्याम

लीलाम्भोधौ कृष्णकैवर्त्तकेन
वंशीन्यस्ता बल्लवी चित्तमत्स्यान् ।
हर्तुं धृत्वा स्वीय लावण्य चूर्णं
तस्याः साकं स्निग्ध हासावलोकैः ॥ ६५
विद्धान् विद्धान्स्मादरेणावगृह्य
बालै विद्धं सार्धमन्तः कुवेण्या ।
आधायागादागोकुलात्पर्वतांशात्
श्रीयात्सोऽसावद्रिराजवुत्सवं वः ॥६६ (युग्मम्)

जलधर के चातकी भूत-हृदय वाले, निगूढ-तेजा श्री गोवर्द्धन निवासी वैष्णव-वृन्द तथा वहाँ के हरि लीला दर्शक खग, मृग, कीट, बानरवृन्द एवं नर्त्तक-नर आदि मुझ पर अनुग्रह कर मुझको श्री गिरिराज की तलहटी में निवास करने की आज्ञा प्रदान करें ! ६४

निज लीला-विलास रूप वारिधि में श्रीकृष्णचन्द्र रूप कैवर्त्त (नाविक) ने श्री ब्रजाङ्गना गण के चित्त रूप मत्स्य समुदाय को फँसाने को मधुर सहास अवलोकन सहित निज लावण्य-चूर्ण को लगाकर वंशी डाल दी । तब वह फँसे हुए मत्स्यों को बड़े प्रेम से निकाल-निकाल कर अन्य गोप बालों द्वारा बिद्ध मत्स्यों—सहित सब को कुबेणी (टोकरी) में डाल कर गोकुल के समीप जिस पर्वत—स्थल से चल दिये वह शैलराज श्री गोवर्द्धन, हे भक्त-गण ! आप लोगों का कल्याण करे । ६५–६६

त्वत्संश्रयेण तरवोऽर्थि मनांसि तानि
संपूरयन्ति बिपुलामलरिक्थदानैः ।
पाषाणखण्डमपि पूरयतेऽखिलार्थान्
किं मे फलिष्यति गिरे, न मनोरथद्रुः ॥ ६७
राधा माधव माधुरी परि लसद्दन्तच्छटापल्लवैः
क्लृप्ते ह्यस्य निकुंजवेश्मनि सदा तिष्ठस्व कालातपात् ।
भीतश्चेद् गिरिराजनीपविपिने पानीयमानीय भो
कंसध्वंसनसत्कथामृतमयं चेतः समुत्कण्ठया ॥ ६८
पीत्वा रसाल मुकुलाग्र पराग सीधु
मीत्याकुलार मधुपी ततिरिङ्गितज्ञा ॥

हे शैलराज ! जब आपका आश्रय लिए हुए वृक्ष भी फल फूल ही क्या धन आदि देकर भी अभिलाषियों के मनोरथों को परिपूर्ण करते हैं और आपका एक पाषाण-खण्ड भी अखिल मनोरथों की पूर्ति करने की सामर्थ्य रखता है तो अपके चरणों में पहुंच कर क्या मेरा मनोरथ रूप वृक्ष सफल नहीं हो सकेगा अर्थात् अवश्य ही हो सकेगा । ६७

हे मन ! यदि कालरूप सूर्यातप (धूप) से भीत हो चुका है तो श्री गिरिराज के सघन कदम्ब-वन के श्रीराधा-माधव (युगल) की मनोरम माधुरी युक्त दन्त-च्छटा-पल्लव-रचित निकुन्ज-भवन में सर्वदा-निवास करता हुआ कंस निकेतन श्रीकृष्णचन्द्र के सत्कथामृतरूप निर्मल जलको उतकण्ठित हो पान किया कर । ६८

जहां संकेत-विशारद मधुकर-वधू-वृन्द मुकुलित रसाल मञ्जरी पर विराजमान हो उसके पराग मिश्रित-मकरन्द का पान कर

क्रीडास्थलो विजयते ब्रज नागरीणां
गोवर्धनो विविध पादप वृन्द शोभो ॥ ६९
गोवर्धनेति मुरलीधरवल्लभेति
रासस्थलेति भगवज्जनपूजितेति ।
कृष्णांगसंगपरिपूर्णमनोरथेति
ये भावयन्ति भुवि तानहमाश्रयामि ॥ ७०
चक्षुः प्रीतिरिव प्रिये मृगदृशां सिन्धोरिवेन्दूदये
सायान्हे युवतीषु मन्मथ इव शृङ्गार भूमाविव ।
स्वैरिण्या रमणे दृढव्रतमिव प्रेष्ठे वधूनां गुरा
वित्थं प्रेमपरंपरा मम परा गोवर्धने वर्द्धताम् ॥ ७१

मधुर आलाप करने लगती हैं, ऐसे विविध वृक्ष वृन्द शोभित गोप-सुन्दरियों के पवित्र क्रीडा-स्थल श्रीगोवर्द्धन की जय हो ।६९

यह श्रीगोवर्द्धन-मुरलीधर श्रीश्यामसुन्दर का वल्लभ (प्यारा) है उनका पवित्र-रास-स्थल (लीला-निकेतन) है तथा भगवद्भक्तों द्वार समाराधित है और श्रीकृष्ण का अङ्ग संगी होने के कारण परिपूर्ण-मनोरथ है और इस धरातल पर जो भक्तों ऐसी भावना किया करते हैं मैं उन्ही भक्तों का आश्रित (सेवक) हूँ ।७०

जैसे निज प्रियतम को देखकर मृगनयनियों के नेत्र प्रसन्न हो उठते हैं, जैसे पूर्ण चन्द्र का उदय देखकर समुद्र हिलोरें मारने लगता है जैसे सन्ध्या समय युवती हृदयों में शृंगार-भूमि (मन्मथ) जाग उठता है,जैसे कुलटा युवती अपने रमण को दृढ़ता से चाहती है, जैसे कुलबधू निज प्रियतम को इष्टदेव समझ कर प्रीति करती है उसी तरह मेरे हृदय की प्रेम परम्परा पूर्ण रूप से श्री गोवर्द्धन के प्रति बढ़ती रहे । ७१

पशु पति रिव गंगा पूर संपूत देहो
हरि पद कंज गन्धानन्दिताशेष विश्वः
गिरिवररयमद्दणो में विलासं प्रयातु
य इह तमभिवन्दे नीलकराठस्वरूपम् ॥ ७२

वैशाख्यांतु विशाखया गिरि श्री कुंजान्तरे नीतया
रेमे राधिकया कलानिपुणया पूर्वानुरागार्द्रया ।
यः कश्चिद्धरिदेव नन्दतनयः प्रोवाच वाढं वचः
स श्रीमान विदधातु लोचनपथं गोवर्धनं मे सदा ॥ ७३

जो सर्वदा भगवान शङ्कर के समान गङ्गा (मानसी-गङ्गा) के प्रभाव से पावन देह वाला विराजमान है, जो श्री कृष्णचन्द्र के चरण-कमल के आमोद से सकल विश्व को आनन्दित करता है। ऐसे श्री गिरिराज सर्वदा मेरे नयनों को सुख प्रद रहे और मैं उसी नीलकन्ठ के समान स्वरूप वाले श्री गोवर्द्धन की वन्दना करता हूँ। ७२

श्रीनन्दराय के कुमार जो हरिदेव वैशाख मास की पूर्णिमा की रजनी में श्री विशाखा सखी द्वारा श्रीगोवर्द्धन कन्दरा निकुञ्ज भवन में कृताभिसार सकल कला निपुण पूर्वानुराग में आर्द्र श्री वृषभानु नन्दिनी के साथ क्रीडा करते हुए तथा वचन रचना चातुर प्रदर्शन करते हैं वे श्रीश्यामसुन्दर सर्वदा श्री गोवर्द्धन को मेरे नयन गोचर करते रहे अर्थात मुझे सर्वदा श्री गोवर्द्धन का पवित्र दर्शन होता रहे। ७३

यस्यैवाश्रयणादसौ गिरिधरः स्वात्मानमप्यर्पयत्
ब्रह्मेशेन्द्रसुराद्यतर्कविषयं गोपीप्रमोदालयं ।
लीला विग्रह माग्रहं तरणिजातीरैक भोगाकुलं
जीयान्मेखिल काम बर्धन परो गोवर्धनः सद्धनः ।। ७४
न वनं न धनं न लालनं
पित्र्यो श्री ब्रज राज नन्दनः ।।
हृदये गिरिकेलिमन्तरा
नाकांक्षीत् किल पातु नः सदा ।। ७५
स्फीतां गोवर्धनाद्रेः श्रियमिममभितो वीक्षितुं नेत्रकोटीं
श्रोतुं तस्याथ दिव्यां प्रियगुणगणानां कर्णकोटिं तथैव ।

जिसका आश्रय-ग्रहण करने से ब्रह्मादि रुद्र महेन्द्रा देवगण की बुद्धि से अगोचर श्री ब्रजांगना गण को आनन्द प्रदायक लीला वतार धारण कर यमुना तट पर विहारासक्त हो श्री श्यामसुन्दर जी से अपने आत्मा को भी प्रेमीजनों के लिए अर्पण कर दिया था मेरी सकल कामनाओं को बढ़ाने (पूर्ण करने वाला) साधुओं का सर्वस्व ऐसा श्री गोबर्द्धन विजय को प्राप्त हो । ७४

श्री ब्रज-राज-नन्दन श्री कृष्णचन्द्र जिस पर्वतराज गोबर्द्धन के क्रीडाकौतुकों के अतिरिक्त न अथबन को चाहते न धन (लीला-केलि) सम्पती को और न माता पितादि के लालन (दुलार) को ही चाहते हैं ऐसे श्री गोबर्द्धन सर्वदा हमारी रक्षा करें । ७५

हे विधाता आप श्री गिरिराज की मनोहर शोभा को देखने के लिये कोटिन नेत्र, और उनके दिव्य प्रिय गुण

जिह्वाकोटिं तदीयामृतमयचरितं वर्णितुं त्वं विधात
पादादीन्द्रिय कोटिं निज निज विषयान् सेवितुं मे प्रयच्छ॥७६
को वा मत्करगो रराज वद भो को नीलकंठायते
गोष्ठं कः समधात् व्रजांतरगतः को वाथ भक्ताग्रणी।
पृष्ठः श्रीहरिदेवकेन स बटुः प्रोवाच मन्दस्मितैः
सानन्दं ब्रजसुन्दरीगणगतं त्वां पातु शैलाधिपः ॥७७
पिच्छै विभूषयति यः स्वयमेव कृष्णं
लास्यं तनोति पुरतः प्रियसंगमेषु।
सोऽयं सुरेन्द्रमखमौलिविनाशहेतु
र्गोवर्धनो विजयते सित-कराठवर्मा ॥ ७८

समूहों को सुनवे के लिये कोटिन कानों तथा उनके अमृतमय चरितों का वर्णन के लिये कोटिन जिह्वा एवं उनको परिक्रमादि करने के लिए कोटिन चरण प्रदान कीजिये। ७६

किसी दिन श्री कृष्णचन्द्रजी ने अपने नर्म-सखा मधुमंगल से पूछा कि क्यों मित्र मेरे हाथ पर विराज कौन सुशोभित हुआ था? एक नीलकंठ (मयूर) के समान आकार कौन धारण करता है? वृज के मध्य ऐसा एकही कौन है जिसने सब ब्रज को धारण कर लिया [बचाली] हो? तथा सकल भक्त शिरोमणी कौन है इस पर वह बटु [सखा] मन्द हास्य करके बोला कि सानन्द ब्रज सुन्दरी वृन्द में विराजमान आपकी शैलाधिप श्री गोवर्द्धन रक्षा करता रहे।७७

जो स्वयं ही श्रीकृष्णचन्द्रजी को मयूर पिच्छों से विभूषित करता रहता है तथा प्रिय-जन-संगम के समय आगे से स्वयं नृत्य करने लगता है सो यह इन्द्र के यज्ञ का मौलिकता के नाश का कारण,

शिखा भिन्ना क्वास्य क्व च मघवतः क्रोधसलिलं ।
क्व वाभीरावासः सकलपशुभिर्यस्य विवरे ।
गिरे क्वेदं रूपं क्वचन हरिदेवांगकृषिमा
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे ॥ ७९

गङ्गाधरं मदन वाण जड़ी कृताङ्गम्
नागेन्द्र शोभित तनुं हरिदम्बराभम् ॥
ध्यानायनं मुनिकदम्बनिसेविताध्रिं
गोवर्धनं हरमिव प्रतिनन्दयामः ॥ ८०

मयूर के समान स्वरूप धारण कर विराजने वाला श्री गोवर्द्धन विजय को प्राप्त हो । ७८

कहाँ तो इस पर्वत की भिन्न [अस्तव्यस्त] शिलायें, कहाँ देवराज महेन्द्र का क्रोध पूर्वक [अखन्ड धार रूप में] प्रलय सम जल वर्षण कहां गोपालों [अभीरों] का निवास-स्थान, और कहाँ इस गिरिराज के [पंच क्रोश प्रमाण] विवर में सकल पशु वर्ग तथा गोप गोपियों का निवास करना, कहां इस पर्वत का विशाल रूप और कहां श्री कृष्ण चन्द्रजी के कोमल शरीर की आकृति ? अतः यह सिद्ध है कि महत्पुरुषों की क्रिया सिद्धि बल [सामर्थ्य] में होती है, उपकरण [बनावट] में नहीं होती है ।७९

गङ्गा (मानस-गंगा) को धारण करने वाले, मदन वाण (इन नामके वृक्षों) से जडी कृत (व्याप्त) अङ्ग वाले, नागेन्द्र (ऐरावत तथा इन्द्र) के द्वारा शोभित शरीर वाले, हरित (हरियाली रूप) वस्त्र से विभूषित, ध्यान (तप-साधना) के स्थान तथा तपस्वीजन जिस की निकट भूमि का सेवन करते

भृंगा मोदक मत्त गोप निकरैः श्री दाम कृष्णार्जुनै
वींणा वेणु मृदगं वादन परैः साकं यशोदात्मजः ।
राधापीत्थममन्दकुंकुम लसत् पाणिः सखीभिर्युता
दर्य्यां यस्य विभाति सोऽयमचलो नः श्रेय-कल्पद्रुमः॥ ८१

यत्रागत्य परागजागुडजलैः पूर्णांवुयंत्रीं वहन्
श्री राधा हरिदेव युग्ममभितो वृन्दादिवृन्दा कुलं ।
चिक्रीडे ललितादिगालिनिनदै र्होलोत्सवालंकृतः
सोऽय श्री मद वर्धनो विजयते गोबर्द्धनो मद्धनम् ॥ ८२

हैं ऐसे श्री शंकर के समान शोभा तथा स्वरूप धारी श्री गोव-र्द्धन का हम अभिनन्दन करते हैं। ८०

भृंगों [कुसुमित वृक्षों] सौरभ से मतवाले, तथा वीणा, वेणु मृदंगादि वाद्य-वादन तत्पर सखा श्रीदामा, कृष्ण तथा अर्जुन आदि गोप-बालकों) सहित यशोदानन्दन श्री कृष्णचन्द्र तथा अपने-अपने हाथों में कुमकुमा लिए हुए सहचरी वर्ग से युक्त श्री वृषभाननन्दिनी श्री राधिका जी दोनों जिसकी विशाल कन्दरा में शोभा पा रहे हैं, वह श्री गोबर्धन नामक पर्वत राज हमारे कल्याणों के लिये कल्पद्रुम [वाञ्छा-प्रदायक] रूप होवे। ८१

गुलाल, अवीर तथा केशर के रंग की भरी हुई पिचका-रियाँ हाथों में लिए हुए चहुँ ओर वृन्दा आदि अनेक सहचरी समूह से युक्त श्री राधिका तथा श्री हरिदेव जी जहाँ [श्री गोवर्द्धन पर] आकर परस्पर होलिकोत्सव की क्रीड़ा करने लगे तथा श्री ललिता आदि [कतिपय-सखियाँ] गाली-गीत

नीलाम्भोदरुचिः प्रकांडवसनं पीतं नितम्बोपरि
रुष्णीषञ्चकचञ्छविं तदुपरि स्फीतं शिखंडाग्रकं ।
वंश्यीं वाद्य हरन्मनांसि मनुजानायाति कोऽयं युवा
सायान्हे गिरिरेष किं गिरिधरः किं वा स्मरः किं हरिः ॥८३
चेतो विमोहयति नः खलु वक्ति किञ्चिन्
नालिगंनाच्चलति हंसगतिं विनिंद्य ॥
पश्चादधीरकरणैकनिदानमेकं
किंकिंगिराविद महो हरिधम्नि चित्रम् ॥ ८४

आदि गाने लगीं, वह हमारा [सर्वस्व] धन श्री गोवर्द्धन विजय को प्राप्त होवे। ८२

संध्या के समय नील जलधर समान शोभाधारी, नितम्ब श पर मनोहर [कुसुमित वृक्ष-रूप] पीत-वसन धारण किए हुए मस्तक पर पाग तथा अलकावलि से शोभायमान और उस पर साफ सुथरे मोर-पंखों वाला, वंशी को बजाकर मनुष्यों के मन को हरण करने वाला यह कौन आ रहा है, गोवर्द्धन-पर्वत है किम्बा गिरिधर श्री कृष्णचन्द्र हैं, अथवा साक्षात् कामदेव है किम्वा यह स्वयं इन्द्र ही है। ८१

अहो, श्री हरि अर्थात् श्री कृष्णचन्द्र के [तेजोमय] धाम इस श्री गोवर्धन में यह क्या-क्या बड़ी विचित्रतायें दीख पड़ती हैं कि हमारे चित्त को [निज-मनोरम-छवि से] मोहित भी करता है और कुछ कथन भी नहीं करता है। यदि प्रेम से आलिंगन करते हैं तो हंस गति को लज्जित करता हुआ चलित [चंचल लुब्ध] भी नहीं होता बल्कि पुनः हमें हरि-प्रेम में अधीर करने का भी एक मात्र यही साधन है। ८४

रे चेतः स्मरतां प्रभातसमये पूर्वापरान्हे निशि
शुद्ध स्फाटक शीतलोज्ज्वल शिलाखण्डाश्रयं श्रीगिरिं।
नो चेद्धानिरियं भवेत्कितवहे हा दुर्ल्लभं मानवं
जन्मस्तेन विहाय सर्वविषयान् गोवर्धनः सेव्यताम् ॥८५
यदि हृदि हरिदेवकेलिधामा
प्रविशति वा वहिरेति वा कदाचित्।
नहि शमनरूषादिभिर्विभेमि
नच कलयामि कृतावधर्मधर्म्मौ ॥ ८६
कदाचिच्छ्रीगोपीजनरमणमाधायहृदये
प्रसादं भक्तानां हर हरि हरे वा किमपि वा

हे मन ! प्रभात समय, पूर्वाह्न का समय अपरान्ह र. तथा सन्ध्या के समय अर्थात् सर्वदा ही निर्मल, स्फटिक-मणि के शीतल-उज्ज्वल शिला-खण्ड समूह मण्डित श्री गोवर्द्धन का स्मरण कर अन्यथा हानि होगी अरे धूर्त और पुनः मानव जन्म पश्चात् दुर्लभ है अतः—सब विषयों को छोड़ कर श्री गोवर्द्धन का ही सेवन कर ! ८५

यदि कदाचित् मेरे हृदय में श्री हरिदेव भगवान् का क्रीड़ा-निकेतन यह श्रीगोवर्द्धन ध्येय रूप से आभासित है किम्वा वाह्य मनोरम दर्शनीय स्वरूप में निरीक्षण में प्राप्त होता तो मुझ को यमराज के कठिन कोप से किञ्चित् भी भय नहीं है और इस जीवन में जो कुल शरीर से धर्म-अधर्म आदि बन सके हैं उनकी भी कुछ पर्वाह नहीं करता हूँ। ८६

श्री गोपी-जन-वल्लभ, भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी की मधुर छवि को हृदय में धारण किए हुए किसी दिन प्रभात

प्रभाते मध्यान्हे क्वचन दिवसान्ते कवलयन्
लुठाम्युन्मत्तो भूधरवरतटे हन्त मनिशम् ॥ ८७

गुरवो यदि मे हठेन हृष्टाः धृष्टस्याभिजनेन मूढबुद्धेः ॥
वचसा हृदयेन शीलयन्तु भज भो श्रीगिरिराजमेव नित्यम् ।८८

भवतु मदीयं शरणमजस्रं
विधुवदनायाः गिरिरिह गेहम् ॥ ८९

गोवर्धने कृता येन प्रीतिः श्री हरिवल्लभे ।
मानुषं जन्ममासाद्य तेन सर्वं शुभं कृतम् ॥ ९०

कभी मध्याह्न तथा कभी २ सायंकाल के समय श्री विष्णु जी, शंकर जी तथा इन्द्रादि देवताओं के भक्त-जनों द्वारा दिए हुए महाप्रसाद को पाकर प्रेमोन्मत्त हो निरन्तर श्री गोवर्द्धन के निकट भूमि (तलहटी) में सानन्द पड़ा रहूँ । ८७

यदि मेरे गुरूजन, इस मूढ़ बुद्धि वाले धृष्ट (चंचल) के कुल या उच्च वंश में जन्मादि के कारण अनायास ही प्रसन्न हो गए हों तो मन और वाणी से यह आशीर्वाद प्रदान करें कि अरे भाई तू सर्वदा श्री गोवर्द्धन का ही सेवन कर। ८८

चन्द्रवदनी श्री वृषभानु नन्दिनी का नित्य-लीला निकेतन यह श्री गोवर्द्धन सर्वदा मेरा रक्षक हो, यही मेरी अभिलाषा है। ८९

जिसने मनुष्य जन्म धारण कर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के प्रियतम श्री गोवर्द्धन में प्रेम किया उसने संसार में सब कुछ शुभ-कार्य सम्पादन कर लिया अर्थात् उस पुरुष का ही जन्म सफल है। ९०

मातर्लोचनगोचरी भवतु मे निद्रे ऽब्धिवद्धाविनी
त्युक्त्वा स्वीय शिरो गृहान्तरगते संविश्य तल्पेऽल्पके ।
स्वापं प्राप यदीय कन्दर गतः श्री राधया यः स्वयं
सोऽयं नेत्रपथं प्रयातु पुरतो गोवर्धन स्वेष्टदः ॥ ६१
एवं प्रभातसमये वनितासहस्रै
र्द्दृश्ये लताप्रहितलोचनभृङ्गजालैः
आसेवितं खर नख क्षत विक्षताङ्गं
युग्मं कदा विजयिनं गिरिराजदर्य्याम् ॥ ६२
प्रागुत्थायानम्य तत्पादयुग्मं
यूथेश्वर्य्याज्ञया संमार्ज्य कुञ्जम् ।

हे मात, निन्द्रे ! तुम समुद्र के समान वेगवती हो, अतः मेरे नयन-गोचर होवो, अर्थात् नेत्रों में आकर विराजो, ऐसे कह कर श्री श्यामसुन्दर श्री वृषभानुनन्दिनी सहित जिसकी कन्दरा मन्दिर के शखरान्तर्गत विश्राम भवन के पर्यंङ्क पर विश्राम कर गाढ़ निन्द्रा सुख लैने लगे ऐसा मनोवाञ्छित प्रदाता श्री गोवर्द्धन मेरे सम्मुख, नेत्र-पथ में प्राप्त हो अर्थात् मुझे उनके पुण्य दर्शन प्राप्त हों । ६१

इसी प्रकार प्रभात समय लता निकुंजों में जिनके नयन भ्रमर क्रीडा करते हैं ऐसी सहस्रों व्रज—सुन्दरियों से निसेवित नख—विक्षताङ्ग विजयी युगल किशोर को श्री गोवर्द्धन कन्द-रान्तर्गत कब दर्शन करने का सुख प्राप्त करूँगा । ६२

प्रभात काल प्रथम प्रबुद्ध हो उनके चरणों में प्रणाम श्री किशोरी जी का आदेश पा निकुंज प्रदेश का संमार्जन आदि

स्नात्वा गंगां कृष्णचित्तोद्भवान्तां
प्रातर्द्रक्ष्ये कुञ्जगो भूधरस्य ॥ ६३

यत्र गीत नृत्य वाद्य लब्ध हर्षसुमण्डितौ ।
श्रीराधिकाहरी च मे विजह्रतु स्म तद्गतिः ॥ ६४

सर्व साधन हीनञ्च दीनन्त्वतिकुबुद्धिभिः ।
समाकीर्णं त्वमद्रेन्द्र नैवोपेक्षितुमर्हसि ॥६५

मदन नद तरंगैरूल्लसन्गोपनारी
हृदयचिलचिमानामामिषं संजिहीर्षुः ।
व्रजपतितनयाख्यो धीवर प्रौढ वंशी
कर हित मपि वादीत्यन्त तत्रास्तु वासः ।६६

कर पुनः श्रीकृष्णचन्द्र जी के मन से उत्पन्न श्री मानस जान्हवी में स्नानादि कर पुनः श्री किशोर-किशोरी युगल को श्री गोवर्द्धन निकुंज में पदार्पण करते हुए कब दर्शन करूँगा ।६३

जहाँ श्री गोवर्द्धन निकुंज-भवनों में गायन, नृत्य, वाद्य आदि सहित उत्पन्न आनन्द-प्रमोद सम्पन्न श्री राधा श्याम सुन्दर नित्य विहार करते हैं वह श्री गिरिराज ही मेरी गति है । ६४

हे शैल-राज श्री गोवर्द्धन, देखो यद्यपि मैं सकल साधन हीन, अति दीन तथा कुबुद्धि हूँ तथापि आप मेरी उपेक्षा करने योग्य नहीं है अर्थात् शरणागत को आश्रय-प्रदान कीजिये ।६५

मदन-नद की तरंगों से उल्लासित गोप-सुन्दरी हृदय मत्स्यों के मांस के आहरणार्थ प्रौढ़ (चतुर) श्री व्रजेन्द्रनन्दन

कृष्णतमालभुजाग्रे किमिदं पुष्पोत्सवं तनुते ।
किम्वा गिरिरिति गोपैरुक्तो पायात् शिलोच्चयो युष्मान

नित्यं ध्याये गिरीन्द्रं खगकुलविरवै कृष्ण कृष्णेतिश
कूजन्तं प्रेमपूर्णं मुनिरिव चरणं श्रीहरेर्ध्यायमानं ।
मुञ्चन्तं वाष्पविन्दूनिव झरनिकरैः शस्यसंघैरिवांगे
शेमाञ्चानादधानं स्फुटविटपिमिषाद्धास्यमास्ये दधानम्

धीवर ने अपनी वंशी को हाथ में ग्रहण कर जहाँ
से उसका वादन प्रारम्भ किया था उसी लीला
गोवर्द्धन में मेरा निवास हो । ९६

हे श्रीकृष्णचन्द्र क्या यह श्याम तमाल की भुजा
भाग में पुष्पोत्सव प्रदर्शन करते हैं अथवा यह पर्व
गोवर्द्धन विराजमान है जिसे निरीक्षण कर गोप
ने उक्त प्रकार कथनोपकथन किया वह श्री गिरिराज
रक्षा करे । ९७

जो पक्षीगणों के कल निनाद मिष कृष्ण-कृष्ण ऐ
शब्द उच्चार करता हुआ प्रेम पूर्ण हृदय तपस्वी के
कृष्णचन्द्र के रूप का ध्यान करता हुआ निर्झर वि
मिष मानों चहुँदिस प्रेमाश्रु बिन्दुओं की वर्षा क
चतुर्दिक शस्य के रोमाञ्चधारी विकसित कुसुमों से श्री
मण्डल पर प्रेम का मधुर-हास्य धारण करता हुआ-न
मान श्री गोबर्द्धन का मैं नित्य ही ध्यान करता हूँ

रध्वं गिरीन्द्रं शृणुध्वं गिरीन्द्रं
जध्वं गिरीन्द्रं जयध्वं गिरीन्द्रम् ।
मध्वं गिरीन्द्रं गृणुध्वं गिरीन्द्रं
गिरीन्द्रं गिरीन्द्रं गिरीन्द्रं गिरीन्द्रम ॥ ९९

धीतं गुरूसन्निधौ न कविता संशीलिता सत्कवे
ै नच पूजिता नच कृतं कामारिसंसेवनम् ॥
तरापि रचिता श्लोकावली ते गिरे
ाखिल् रणां गिरमिमां हर्षादिवांगीकुरू ॥ १००

ब कवि, इस काव्य के प्रेमी पाठकों को आदेश करता है
क हे भक्त जनो—गिरीन्द्र को ही स्मरण करो, गिरीन्द्र के यश
ही श्रवण करो तथा गिरीन्द्र का ही सेवन करो एवम्
न्द्र श्री गोवर्द्धन का ही जप करो तथा उसे ही नमन करो
के गिरीन्द्र में तन्मयता प्राप्त करने में ही तुम्हें सिद्धि प्राप्त
ो अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्र जी का सान्निध्य तथा प्रेम प्राप्त होगा
र इसी में मानव जन्म की सार्थकता है । ९९

हे पर्वत राज श्री गोवर्द्धन ! न तो मैंने गुरु-सन्निधि में
शेष अध्ययन किया, न सत्कवियों के काव्यों का अनुशीलन
या, न वाग्देवी का यजन किया तथा न मैंने श्री शङ्करजी का
माराधन किया है अस्तु इन साधनों से रहित होकर भी जो मैंने
म्हारे सम्बन्ध में इस 'श्लोकावली की रचना की है उसे जैसे
ता अपने पुत्र की अनेक दोष दुष्ट वाणी को भी स्वीकृत कर
लेते हैं इसी प्रकार आप इसे कृपया अंगीकार कीजिये यही
ी प्रार्थना है । १००

भूयाच्छ्रीहरिदेव कर्ण कुसुमं सद्भक्तिगन्धार्जितं
सेवा पुष्य रस प्रपान चतुरै र्भक्तालिभिः सेवितम् ।
अद्रिस्तोत्रमिदं व्रजे विरचितं कण्ठे करिष्यन्ति ये
ते पास्यन्ति शिलीन्ध्रतांच विशदां कुंजे निकुंजेशयोः ॥१०

इति श्रीमद्धरिलीलामृतशतके श्रीमत्केशवाचार्यविरचितं
श्रीगोवर्द्धनशतकं सम्पूर्णम् ।

अन्त में कवि आशा करता है कि "श्री गोवर्द्धन-शत नामक स्तोत्र जो कि व्रज में ही (अर्थात् व्रजवासी कवि द्व ही) विरचित किया गया है, यह सेवा मकरन्द-रस-पान चतुर भक्त-भ्रमर सुसोभित, श्रेष्ठ-भक्ति सौरभ-सम्पन्न काव्य, श्री हरिदेव-भगवान् के कर्ण का आभरण पुष्प गुच्छ के समान होवे और जो साधक-भक्त इसे कण्ठस्थ करेंगे वे श्री निकुंजेश्वर-युगल की कुञ्ज-स्थली में शिलीन्ध्रता, (भ्रमरता) अर्था श्रीगोवर्द्धन की समता को प्राप्त होंगे। भाव यह है कि, जैसे श्री राधा कृष्णजी के लिये श्री गोवर्द्धन प्राणोपम प्रिय है उसी प्रकार वह भक्त भी उनके प्रेम को प्राप्त करेगा । १०१

श्री हनूमान प्रिंटिंग वर्क्स, गुड़ की मण्डी, आगरा,